

बच्चे असफल कैसे होते हैं ?

□ विशाल सिंह

बच्चों के शिक्षण में मूल्यांकन के तकनीकी हस्तक्षेप ने सफलता और असफलता की ऐसी विभाजक खाई तैयार की जिस पर सेतु-निर्माण के प्रयास लगभग बेमानी रहे हैं। 'बच्चे असफल कैसे होते हैं' पुस्तक चंद उन किताबों में से है जिन्होंने बच्चों को सफलता-असफलताओं में बांटने वाली शिक्षण-प्रक्रिया को ही बुनियादी तौर पर गलत ठहराया है। निश्चय ही, ऐसी और कुछ किताबों की तरह इस पुस्तक को भी क्लासिक का दर्जा हासिल है। लेकिन हम यहां उल्लेख करना चाहेंगे कि ऐसी कई पुस्तकों की भांति इस पुस्तक का प्रस्थान-बिन्दु भी शिक्षा-मनोविज्ञान और बाल-मनोविश्लेषण है; जहां शिक्षा का दार्शनिक परिप्रेक्ष्य लगभग गायब है। ऐसी स्थिति में यह आशंका उचित ही लगती है जो इस समीक्षा में व्यक्त की गई है : पुस्तक में सुझाये गये तरीकों की शिक्षण-विधि और रणनीतिक कौशलों के तौर पर इस तरह पुनरावृत्ति की जा सकती है कि वह एक नयी रुढ़ि बनकर रह जाये।

शिक्षा मानवीय विकास का एक महत्वपूर्ण आयाम है। इसके बिना मानव जीवन में विकास काफी कुछ अधूरा रह जाता है। कुछ लोग तो पारिवारिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों के कारण शिक्षा से वंचित रह जाते हैं पर बहुत से लोग चाहते हुए भी पढ़ाई में पिछड़ जाते हैं, असफल हो जाते हैं। यह अलग बात है कि कई बार वे जीवन के दूसरे क्षेत्रों में कहीं ज्यादा सीख लेते हैं और ज्यादा सफलता पा जाते हैं बजाय पढ़े लिखों के। पर शिक्षा जगत में यह एक बड़ी चुनौती है जिसके प्रति कभी गंभीरता से विचार नहीं किया जाता कि आखिर बच्चे असफल क्यों हो जाते हैं ? शिक्षक प्रायः बच्चों की असफलता का कारण उनके बौद्धिक पिछड़ेपन, लापरवाही, खेलकूद में अधिक रुचि, पारिवारिक परिवेश, अभिभावकों की लापरवाही पर डालते हैं। और धीरे-धीरे यह परम्परा ही बन गई है कि नियमित विद्यालय में बालक यदि दो बार से अधिक असफल हो गया तो उसे दुबारा प्रवेश नहीं मिलता। बालक को अपनी असफलता स्वीकारने के सिवा कोई चारा नहीं रहता, अंततः बालक पढ़ाई ही छोड़ देता है। अभिभावक भी इसे बालक का पिछड़ापन मानकर स्वीकार कर लेते हैं। कभी-कभी कुछ अभिभावक विद्यालय और शिक्षक से ज्यादा अपने बालक पर भरोसा करते हुए दूसरे विद्यालयों/अध्यापकों को आजमाते हैं और ऐसा करने पर बालक में कई बार चमत्कारिक परिवर्तन दिखाई देते हैं। बालक असफलताओं को लांघते हुए सफलता को पा जाते हैं। पर प्रायः विद्यालयों का वातावरण और शिक्षकों का नजरिया एक सा होता है। अतः बालकों के शिक्षण व्यवहार में सफलताओं से ज्यादा असफलताओं की संख्या है। अब सफलता और असफलता भी व्यक्तिपरक हो सकती है पर आम राय यह है कि परीक्षा में बनाई गई श्रेणियों को लांघना ही सफलता है।

शिक्षा जगत से लम्बे असें तक जुड़े अध्यापक जॉन हाल्ट ने अपने अध्यापन या कहें शिक्षण-कार्य के दौरान अनेक प्रयोग किये। ये प्रयोग उन्हें अपने विद्यार्थियों के साथ विकसित हुए अनौपचारिक संबंधों के कारण ही करने पड़े।

जान हाल्ट, गिजु भाई या सिलविया एस्टन जैसे कुछ गिने चुने ही अध्यापक हैं जिन्होंने शिक्षा में बालकों की असफलताओं के अंधेरे जंगल में उजाले की तलाश की है।

“बच्चे असफल कैसे होते हैं” पुस्तक जान हाल्ट की पुस्तक “हाऊ चिल्ड्रन फेल” का हिन्दी संस्करण है जो मूलरूप में 1964 में छपी और हिन्दी संस्करण के रूप में एकलव्य द्वारा 1993 में प्रकाशित हुई। पांच भागों में विभक्त पुस्तक की मुख्य बात यह है कि “बालकों की शिक्षा में असफलता उनकी स्वयं की असफलता नहीं है वरन् यह असफलता उनके शिक्षकों की है। विद्यालयों व उनमें व्याप्त माहौल की है। और उन अभिभावकों की भी है जो अपने बालक की क्षमताओं को शिक्षकों की भांति पहले निर्धारित कर दिए गए एक निश्चित सांचे में देखते हैं।” प्राक्कथन में ही जान हाल्ट कहते हैं कि ‘अधिकांश बच्चे स्कूल में फेल होते हैं’ पर जाहिर तौर पर इन बच्चों के अलावा भी तमाम बच्चे हैं जो फेल होते हैं, अंकों की दृष्टि से नहीं बल्कि एक दूसरे, कहीं गहरे अर्थ में असफल होते हैं। वे अपनी स्कूली शिक्षा महज इसलिए पूरी करते हैं कि शिक्षक उन्हें अपनी सहमति से अंक देकर धकियाकर स्कूल से बाहर निकालने में सहायता करते हैं। पर इस सफलता से भी गहरी असफलता है जो मुट्ठी भर छात्रों के अलावा सभी छात्रों में समान रूप से मिलती है। यह गूढ़ असफलता बच्चों के सीखने, समझने और रचने के जन्मजात और असीम सामर्थ्य को न पहचानने

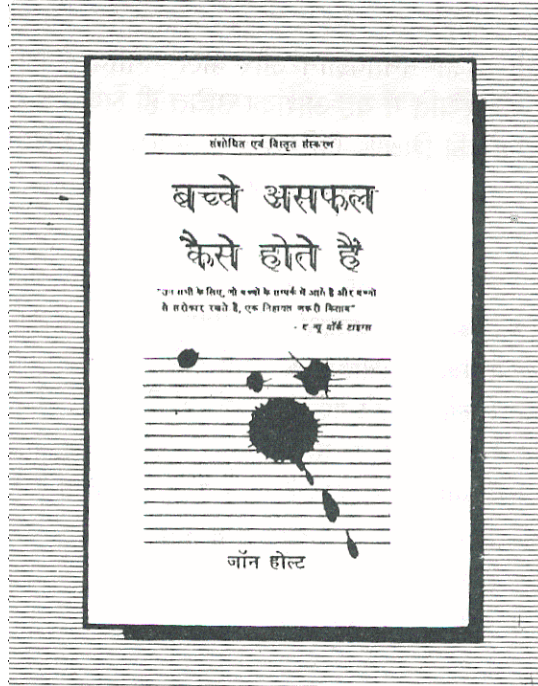
की है। उसे खो देने की है। जॉन हाल्ट मानते हैं कि कोई भी बालक जन्मजात बुद्धिहीन, नासमझ और अजिज्ञासु नहीं होता। सभी में सीखने की असीम संभावनाएं शिक्षकों की पेंतरेबाजी से बालकों में पैदा किये गये डर, ऊब और भ्रम के कारण विकसित नहीं हो पाती। बच्चों को आप स्कूल की, शिक्षक की अच्छाइयों के बारे में कितना ही प्रलोभन दें जब तक बालक स्वयं अच्छा माहौल अनुभव नहीं करेगा तब तक उसके सीखने की संभावनाएं अवरुद्ध ही रहेंगी। विद्यालय उन्हें कैदखाने नजर आयेंगे और अध्यापक संतरी। बालक छुट्टी की घंटी का ही इन्तजार करते रहेंगे। और घंटी बजते ही घर की ओर ऐसे भागेंगे मानो कैद से छूट रहे हों। बालकों का विद्यालयों से यह पलायन तब तक जारी रहेगा, जब तक कि शिक्षक स्वयं को एक बॉस, थानेदार या न्यायाधीश की पारम्परिक भूमिका में देखता रहेगा। ऐसी स्थिति में वह अपने शिक्षार्थियों को समझ ही नहीं सकेगा।

हाल्ट कहते हैं कि अध्यापक द्वारा अपनी कक्षा को एक रोचक व सुरक्षित स्थान बनाने का हर संभव प्रयास करते हुए भी वह एक उबाऊ, भ्रमित करने वाली खतरनाक जगह ही बनी रहती है। यही वजह है चाहे बालक शारीरिक रूप से भले ही पलायन न कर पाये पर मानसिक तौर पर वह सपनों के साये में चला ही जाता है। ऐसे में अध्यापक पढ़ाकर भी क्या हासिल करेगा? किसी कक्षा में बैठा शिक्षक ठीक उसी स्थिति में होता है जैसे घुप्प अंधेरी रात में जंगल में टार्च जलाये भटकते हुए कोई व्यक्ति होता है। जहां भी वह टार्च चमकाता है उस ओर के जीव जन्तु टार्च की रोशनी में आ जाने के कारण असहज हो जाते हैं और उनका व्यवहार बदल जाता है। यानि निरीक्षण की प्रक्रिया ही व्यवहार को बदल देती है। व्यक्ति अपनी टार्च की रोशनी चाहे जिस ओर क्यों न फेंके, वह रात्रि जीवन के बारे में बहुत कुछ नहीं जान पाता। इसी तरह शिक्षक भी इंस्पेक्टर की भूमिका में रहकर बालकों को समझ नहीं सकता, चाहे वह समझने के कितने ही प्रयास क्यों न करे। पहले उसे अपना व्यवहार सहज करना होगा, अपने सोच में परिवर्तन करना होगा।

जॉन हाल्ट तो यहां तक कहते हैं कि हमें बालकों को समझने के लिए जरूरी है कि एक कक्षा में दो शिक्षक एक साथ रहकर पढ़ायें। एक पढ़ाये तो दूसरा उन्हें समझे कि वे कितना कुछ समझ

पा रहे हैं। सुन पा रहे हैं, ध्यान दे पा रहे हैं। पर व्यावहारिक तौर पर यह कहां संभव है, अभी तो एक कक्षा के लिए एक शिक्षक ही नहीं है।

कुछ सृजनशील और प्रगतिशील सोच के शिक्षक तो हमेशा महान लक्ष्य लेकर चलते हैं और मानकर चलते हैं कि वे जो कुछ पढ़ा रहे हैं वह सब बालकों के लिए अनमोल खजाना है। पर क्या यह सोच भी सही है। बालक क्या सोचते हैं यह भी तो जानना जरूरी है। शिक्षक इतिहास पढ़ाता है तो सोचता है कि उसका विषय सबसे अधिक रोचक, उत्साहवर्धक उत्तेजक और महत्वपूर्ण विषय है। भाषा, विज्ञान, कला के शिक्षक भी अपने अपने विषयों के गुणों के संदर्भ में सोचते हैं पर क्या बालक भी ऐसे ही सोचता है। यह विचार करने का प्रश्न है। एक डॉक्टर यह कह कर थक जाये कि उसकी दवा बच्चे के लिए बेहद फायदेमंद है, फिर भी बच्चे का ध्यान दवा की कडवाहट या इंजेक्शन की सुई से होने वाले दर्द की ओर ही होता है। जान हाल्ट कहते हैं कि बच्चे स्कूल में उसी स्थिति में होते हैं जैसे की जंजीरों में जकड़े हुए कैदी हों। वे हमेशा भय के कारण ही स्कूल की राह पकड़ते हैं अथवा कभी के भाग खड़े होते हैं। कुछ तो दुस्साहस कर ऐसा कर भी देते हैं।



बच्चे विद्यालय में सीखने की अपेक्षा कुछ औपचारिकताएं पूरी करते हैं। शिक्षक द्वारा किये गये प्रश्नों के उत्तर देना/गृह कार्य करना, सीधे अनुशासित होकर बैठना, आदि। कुल मिलाकर विद्यार्थी शिक्षकों और विद्यालयों की पेंतरे बाजी का शिकार बने रहते हैं। यह पेंतरे अनेक व्यवहारों में झलकते हैं।

शिक्षकों में एक प्रवृत्ति यह भी पाई जाती है कि वे केवल 'उत्पादक' बालकों, रटे-रटाये पूर्व निर्धारित एवं अपेक्षित अंक लाने वाले बालकों तथा अच्छे अंक लाकर सफल होने वाले विद्यार्थियों को ही प्रोत्साहित करते हैं। जॉन हाल्ट कहते हैं कि तमाम विद्यालयों में "सही उत्तर" पाने का तंत्र चलता है। विचार और सृजन को कोई स्थान यहां नहीं होता। यहां विचारक छात्रों को हतोत्साहित ही किया जाता है। अपने अनुभवों के आधार पर वे कहते हैं कि पिछड़े, असफल और बुरे छात्र, सफल और अच्छे

छात्रों की तुलना में कुछ भिन्न तरह से सोचते हैं। जब बच्चों पर असफलता की संभावना और भय हावी होने लगते हैं तो वे खास तरह से सोचते और व्यवहार करने लगते हैं। उनकी रणनीतियां भी भिन्न होती है। उसमें एक छात्र एमवी का उदाहरण देते हुए हाल्ट कहते हैं कि उसमें अपने किए हुए काम को तटस्थ हो गौर से देखने की भावनात्मक क्षमता ही नहीं है। ऐसे में अनेक छात्र हैं जिन्हें हम असफल, बुरे और पिछड़े कहकर अजरन्दाज करते जाते हैं। पर क्या इन बालकों में सीखने की संभावनाएं नहीं? ऐसा नहीं है, संभावनाएं तो हैं पर उनके साथ विशेष प्रयास करने की आवश्यकता होती है। उनके सोच, सृजन शक्ति और समझ को बढ़ावा देकर पहले उन्हें समझने की आवश्यकता होती है। पर हम ने तो उनकी स्थिति कुछ और ही बना दी है। असफल व कमजोर छात्रों की विद्यालयों में स्थिति एक ऐसे जन्तु की तरह है जो किसी खतरे का सामना कर रहा हो। ऐसा पशु जो हवा के वेग से दौड़ता है, मुड़कर देखता तक नहीं, क्योंकि वह जानता है कि पीछे खतरा है। उस खतरे से जितना दूर वे भाग सकते हैं उतना वे भाग खड़े होते हैं।

शिक्षकों की पैतरेबाजी के संदर्भ में जान हाल्ट ने कई जगह पुस्तक में यह उल्लेख किया है कि यह पैतरेबाजी कितनी ही होशियारी से क्यों न की जाये, बालक अपने शिक्षक को बहुत जल्दी समझ लेते हैं। वे जान लेते हैं कि शिक्षक को कब गुस्सा आता है, शिक्षक क्या पसंद करता है, क्या अपेक्षा रखता है। और इस जानकारी से बच्चे अपने आपको शिक्षक के अनुकूल ढाल लेते हैं। परिणाम स्वरूप संपूर्ण शिक्षातंत्र शिक्षक के इर्दगिर्द घूमता है। पर “कमजोरियां” चाहे शिक्षक की स्वयं की हों या विद्यार्थियों की, सामने आ ही नहीं पाती।

जो कुछ शिक्षक कक्षाओं में करते हैं। उसमें कुछ सीखने में सहायक होता है तो कुछ बाधक भी होता है। अतः शिक्षकों को सब कुछ उंडेलते हुए भी मंथन करने की जरूरत है कि उनके द्वारा जो कुछ पढ़ाया जा रहा है या किया जा रहा है उसमें कुछ निरर्थक भी है। ऐसा करके ही शिक्षक सही रणनीति व शिक्षण व्यवहार स्थापित कर सकता है।

भय और असफलता

पुस्तक के दूसरे भाग में बालकों को असफलता के भय से जो उत्पीड़न पहुंचता है उससे होने वाले दुष्प्रभावों की व्याख्या की गई है। इस भाग में जान हाल्ट ने जहां अपने अनुभवों के आधार पर विद्यालयों में बालकों में उत्पन्न किये जाने वाले भय, प्रतियोगिता, एक दूसरे को नीचे दिखाने की वृत्ति, अध्यापकों की उदासीनता के व्यवहारिक पक्षों का विश्लेषण किया है, वहीं सफलता और असफलता की अच्छी खासी दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत की है। उन्होंने ‘असफलता’ को एक भिन्न दृष्टिकोण से देखने का प्रयास

किया है। वे कहते हैं - “इस बात पर तो हम सहमत हैं कि सभी बच्चों को सफलता की आवश्यकता होती है पर क्या हम सबका आशय भी एक ही है? मेरा निजी विचार तो यह है कि सफलता न तो सहज प्राप्त होनी चाहिये न आसानी से ही, और न ही वह हमेशा मिलती जानी चाहिये। सफलता का अर्थ ही बाधा को पार करना होता है। इस विचार के भी परे पहुंचना होता है कि शायद हम सफल न हो सकें। यह तो मैं नहीं कर सकता को “मैं कर सकता हूँ” “लो मैंने किया” में बदलना होता है।”

यह हमें शुरू से ही सीख लेना चाहिये कि हम हमेशा सफल नहीं हो सकते। बेसबाल में बल्लेबाजी का बढिया औसत 300 माना जाता है, पर जिन्दगी की बल्लेबाजी का औसत इससे कहीं कम होता है।

जीवन में हम सबको विजय से कहीं अधिक पराजय का सामना करना पड़ता है। तो फिर क्या इसकी हमें शुरू से ही आदत नहीं पड़ जानी चाहिये? “व्यक्ति की ललक उसकी पकड़ के परे होनी ही चाहिये, आखिर आशा है किस लिए?” “जो हम आज नहीं कर सकते, वही हम कल कर सकेंगे या कोई दूसरा कर सकेगा। हमारी असफलता किसी दूसरे की सफलता के लिए राह तैयार कर सकेगी।”

जॉन हाल्ट बच्चों के संदर्भ में आगे कहते हैं कि हमें प्रयास करना चाहिये कि ऐसी स्थिति पैदा ही न होने दें कि बच्चों को अटूट असफलता मिले। असफलता के प्रति हमें अपना और बच्चों का दृष्टिकोण ही बदल देना चाहिये। हमें देखना चाहिये कि असफलता की भी गरिमा होती है। उसका रूप सकारात्मक होता है न कि लज्जाजनक।

सफलता और असफलता दोनों ही वयस्क विचार हैं जो हम बच्चों पर आरोपित करते हैं, दोनों सिक्के के दो पहलुओं की तरह हमेशा साथ-साथ चलते हैं। चलना सीखने वाले बच्चे बार बार गिरते भी तो हैं, छः सात वर्ष के बच्चे साइकिल चलाना सीखते समय कई बार लुढ़कते और चोट खाते हैं। पर गिरते ही ये बच्चे ये नहीं सोचते कि लो देखो, मैं तो असफल हो गया। बच्चे जब किसी काम को करना शुरू करते हैं तो वे सफलता असफलता के संदर्भ में सोचते ही नहीं हैं। वे तब केवल अपने प्रयासों और काम से मिलने वाली उत्तेजना के बारे में सोचते हैं। जब वयस्कों को खुश करना महत्त्वपूर्ण बन जाता है, केवल तभी सफलता और असफलता के बीच वह गहरी रेखा उभर आती है।

अपने शिक्षण कार्य के दौरान अपने विद्यार्थियों से पूर्णतः अनौपचारिक रिश्ता रखने वाले, खुला व बेहिचक संवाद रखने वाले

शिक्षक जान हाल्ट ने भी अपने बच्चों से बातचीत के दौरान पाया कि उसके जैसे प्रगतशील एवं खुले महौल के विद्यार्थी भी भय मुक्त नहीं है। उनमें भी असफलता के प्रति हाय का भाव निहित है। वे फेल होने से डरते हैं, पिछली कक्षा में रोक लिए जाने से डरते हैं, बुद्धूपन के अहसास से डरते हैं। इसके बारे में हम क्या कर सकते हैं, यह शिक्षकों के लिए एक बड़ी चुनौती है। अतः असफलता को हउआ बनाने की बजाय उसे सहजता से कैसे स्वीकार किया जा सकता है, इस पर ध्यान देने की ज्यादा जरूरत है।

बच्चों के सहज सीखने की प्रवृत्ति में हम वयस्कों की 'सजगता' एवं 'सावधानी' अनचाहे और अनजाने में बाधा ही उपस्थित करती है। हम सभी बच्चों को सीढ़ियां उतरते देखते हैं तो पाते हैं कि बच्चे स्वयं सावधानी से विचार करके ही निर्णय करते हैं कि उन्हें उतरना चाहिये या नहीं। पर वयस्कों की सावधानी के सामने बच्चों की यह सामर्थ्य पराश्रित हो जाती है और बच्चे किसी भी कार्य करने में झिझकते हैं तथा असफल भी हो जाते हैं। लंदन के हालैण्ड पार्क का उदाहरण देते हुए हाल्ट बताते हैं कि इस पार्क में बच्चों के चढ़ने के लिए ढेरों पेड़ थे। उनमें रस्सियां लटक रही थी। बच्चे उन पर चढ़कर लटककर झूल सकते थे। मैंने (हाल्ट) देखरेख करने वाले युवक-युवतियों से जानना चाहा कि वहां खेलते-खेलते कितने बच्चों को चोट लगती है। मुझे बताया गया कि जब से वयस्कों पर अन्दर आने की पाबन्दी लग गई है तब से कोई बच्चा घायल नहीं हुआ है। माताओं की सावधानी, 'अभी गिरजाओगे, अभी गिरोगे' की चिल्लपौ सुनते-सुनते बच्चे बौखला जाते हैं और सामर्थ्य से ज्यादा करने की जिद में गिर जाते हैं।

बच्चों के प्रति इस गहरे अविश्वास ने, इस धारणा ने, कि न जाने किस क्षण कैसी भयानक बेवकूफी हो या वे तोड़फोड़ कर डालें, प्रायः सभी पूर्व प्राथमिक शालाओं और पालना-घरों के वातावरण को दूषित कर डाला है। स्कूलों में डर किस कदर व्यापा होता है यह जानकर आश्चर्य ही होता है। पर इसकी चर्चा कभी नहीं होती। न तो शिक्षक, न ही प्रबन्धक इस बात को महसूस करते हैं। बच्चों में भय देखकर भी हम उसे पहचानते नहीं हैं। संभव है लोग भय के स्थूल रूप को ही पहचानते हों, जैसे कोई नन्हां सा बच्चा अपनी मां से चिपटता चला जा रहा है। पर उनके उस सूक्ष्म रूप को, जो बच्चे के चेहरे पर, उनकी आवाजों, भाव भंगिमाओं में ही व्यक्त होता है पर उसे लोग पहचान नहीं पाते। अनुभव बताता है कि अधिकतर बच्चे स्कूलों में अधिकांश समय भयभीत ही रहते हैं। और कुछ तो बेहद डरे रहते हैं। कुछ अच्छे सैनिकों की तरह भय को काबू में रख लेते हैं उनसे समझौता कर लेते हैं। किन्तु भय के साथ किया गया हरेक समझौता बच्चे के लिए हानिकारक होता है। वह उसकी मेधा को, क्षमता को नष्ट करता है। एक

भयभीत योद्धा शायद एक बेहतरीन सैनिक सिद्ध हो सकता है, पर एक सहमा हुआ शिक्षार्थी हमेशा एक खराब शिक्षार्थी ही होता है।

जान हाल्ट उल्लेख करते हुए कहते हैं कि सहमे और डरे हुए बच्चों की रणनीतियां हमेशा ही आत्मकेन्द्रित एवं आत्मरक्षात्मक होती है। उनका लक्ष्य होता है हर संभव खतरे, हर प्रकार की लज्जा व सजा व हर तरह की निंदा से और कक्षा में अपने रुतबे को खोने से बचाना। यह बात खास उन बच्चों पर लागू होती है, जिन्हें स्कूल में परेशानी का सामना करना पड़ा हो। मैं क्या यह सवाल कर सकूंगा? शायद नहीं, पर गलती हुई तो क्या होगा? यदि मैं फेल हो गया तो? आखिर मैं इस कदर बुद्धू क्यों हूँ? आदि प्रश्न अक्सर डरे और सहमे हुए बालकों के चेहरे पर उभरते हैं जिन्हें हाल्ट जैसे शिक्षक ही पढ़ पाते हैं।

पुस्तक में हाल्ट मानसिक रूप से पिछड़े बालकों, जिन्हें आम बोलचाल में हम मंदबुद्धि बालक कहते हैं के संदर्भ में भी बड़ी मार्मिक टिप्पणी करते हुए कहते हैं, "मैं कहना चाहता हूँ कि मानसिक रूप से अपंग या पिछड़े बच्चे पैदा नहीं होते। वे बनाए जाते हैं। अब मेरा ऐसा विश्वास है कि तथाकथित पिछड़े बच्चे सच में उस हाल में जन्मते नहीं हैं। उन्हें बकायदा ऐसा बनाया जाता है। इसकी प्रक्रिया कुछ यों होती है: सबसे पहले तो अगर कोई बच्चा विकास के परिचित और सामान्य रास्तों पर न बढ़े या समयानुसार विकसित होता न दिखे तो उसका निदान किया जाता है। यानि उस पर त्रुटिपूर्ण होने का बिल्ला चिपकाया जाता है। मानों उसमें कुछ कमियां हों। और यह व्यवहार होता है, उसकी देखभाल, इलाज, या उपचार के नाम पर। तीसरे चरण में बच्चा अपने आपको त्रुटिपूर्ण मानने लगता है। वह धीमे-धीमे ठीक वही रूप धारण करने लगता है, जो विशेषज्ञों के अनुसार उसका रूप होता है।"

एक सरकारी प्राथमिक शाला की अद्भुत शिक्षिका की कक्षा में एक ऐसे बच्चे को भेजा गया, जिसे मानसिक रूप से पिछड़ा करार दिया गया था। बच्चे को भेजा इसलिए गया, क्योंकि उसके लिए कोई और जगह थी ही नहीं। बच्चा उपेक्षित, कमजोर और गन्दा था। उसके कपड़े मैले कुचले थे और वह भय और लज्जा से भरा हुआ था। शिक्षिका ने सबसे पहले उसकी शारीरिक जरूरतों को पूरा करने के उपाय ढूंढे, और तब वह सब भी दिया जो उसे खास जरूरत थी-ध्यान, शारीरिक स्पर्श, और मानसिक संबल। इस व्यवहार से, जैसा कि अक्सर होता है यह बच्चा भी, जिसके पास किसी भी तरह की स्कूली दक्षता या कौशल न थे, एक ही वर्ष में पांच वर्षों का काम कर सका और तब वह अपनी कक्षा के दूसरे बच्चों के स्तर पर आ गया। पर फिर भी हम इस तरह की सफलता

को स्वीकार नहीं करते । पर जो लोग किसी बच्चे को पिछड़ा कहते हैं उसके पीछे उनका क्या तर्क और प्रमाण है ? ऐसे कितने ही बच्चे होंगे जिन्होंने प्रारंभ में कुछ चीजों को धीमे और कठिनाई से सीखा पर बाद में वे कुशल खिलाड़ी, धावक व वक्ता सिद्ध हुए हैं । हमारी भूल बुनियादी है । यह भूल भाषा की है । हम 'सामान्य' का अर्थ प्राथमिक से लेते हैं, यानि वह जो हमेशा होता है । और तब हम इसे ही सही, उचित, वांछनीय में बदल डालते हैं यानि वह जो हमेशा-हमेशा होना ही चाहिए ।

कुल मिलाकर जान हाल्ट पुस्तक के इस खंड में एक ही बात की वकालत करते हैं कि बालकों की शिक्षण क्षमताओं को बढ़ाने, उन्हें असफल नहीं होने देने के लिए जरूरी है कि विद्यालयों का वातावरण भयमुक्त हो और उबाऊपन लिये हुए न हो। जो लोग यह कहते थे कि बिना दबाव के कोई काम नहीं करवाया जा सकता और शिक्षण में भी एक दबाव जरूरी है, उनके लिए हॉल्ट कहते हैं कि यह तो गुलामी और दासता का सिद्धांत है जो सहज शिक्षण में बाधा उपस्थित करने के अतिरिक्त कुछ नहीं करता ।

कुछ लोग कहते हैं कि "ये बच्चे इसलिए नहीं पढ़ पाते क्योंकि वे अपने दिमाग का सही इस्तेमाल नहीं करते या नहीं करना चाहते ।" दूसरे कहते हैं "नहीं पढ़ पाने का कारण यह है कि उनके दिमाग में कुछ कमी है।" लेकिन जान हाल्ट को यह बहस झूठी और बेमानी लगती है । वे कहते हैं कि जिस अन्तर को हम मस्तिष्क और उसके उपयोग के बीच मानते हैं, उसका अस्तित्व केवल बातचीत के लिए ही है, यथार्थ के स्तर पर वह नहीं मिलता। एक उदाहरण के द्वारा इस बात को और स्पष्ट किया गया है । दिमाग सोचने की कोई मशीन तो है नहीं, जिसे हमारे अन्दर छिपा कोई व्यक्ति अच्छी या बुरी तरह उपयोग में लाता हो । वह तो है और वह काम भी करता है । शायद अच्छी तरह । शायद बुरी तरह । पर जिस तरह वह किसी एक समय काम करता है, उसका सीधा संबंध इस बात से है कि वह आगे किस तरह काम करेगा ।

वास्तविक ज्ञान

पुस्तक के तीसरे भाग में लेखक ने बच्चों को सहज शिक्षण देने के लिए स्वयं तथा उसके विचारों से मिलते जुलते शिक्षकों द्वारा अपनाई जाने वाली शिक्षण-विधियों की व्याख्या एवं विश्लेषण किया है । यह बताने का प्रयास किया है कि पारम्परिक पद्धति में बच्चे रट कर अच्छे अंक भले ही पा जायें, शिक्षकों द्वारा गढ़ी गई सफलता के पैमानों में भले ही फिट हो जायें, किन्तु वे वास्तविक समझ पैदा नहीं कर पाते । चाहे ये गणित शिक्षण की बात हो या फिर भाषा शिक्षण की।

कुछ उदाहरण देना यहां समीचीन होगा ।

"समझ के बारे में अक्सर कहा जाता है कि वह जितनी साफ और गहरी होगी, उतना ही व्यापक उसका उपयोग हो सकेगा । अगर यह सच है तो हमें बच्चों को भिन्नो के विचार से अवगत कराने के लिए विविध उपाय सोचने होंगे । ऐसे काम सोचने पड़ेंगे जिनमें भिन्नो को काम में लेना पड़ता है ।"

"अगर बच्चों को यह लगता है कि इस सृष्टि का सिर-पैर समझा नहीं जा सकता है, तो इसका कारण शायद यही है कि हम उसके वर्णन के लिए जिस भाषा को काम में लेते हैं वह अर्थ विहीन होती है ।"

"फिर जिस तरह हम व्याकरण सीखते हैं, वह भी तो बच्चों को भ्रमित करता है । हम संज्ञाओं और विशेषणों

की बात तो करते हैं मानों वे बिल्कुल पृथक ही हों । पर वास्तविकता यह है कि वे अक्सर एक से होते हैं । हम कहते हैं हरी गेंद, हरा लट्टू, हरी साइकिल, हरा खिलौना । इन सब में हरापन (विशेषण) साम्य है। और खिलौना संज्ञा है ।"

हाल्ट मानते हैं कि हमारे शिक्षण में ही कहीं ऐसी खामी रह जाती है कि हम बालकों को वास्तविक ज्ञान से वंचित कर देते हैं। हाल्ट कहते हैं कि विद्यालय में एक खास तरह की रणनीति काम करती है और यह रणनीति समस्या केन्द्रित न हो कर उत्तर-केन्द्रित

जीवन में हम सबको विजय से कहीं अधिक पराजय का सामना करना पड़ता है । तो फिर क्या इसकी हमें शुरु से ही आदत नहीं पड़ जानी चाहिये ? "व्यक्ति की ललक उसकी पकड़ के परे होनी ही चाहिये, आखिर आशा है किस लिए ?" "जो हम आज नहीं कर सकते, वही हम कल कर सकेंगे या कोई दूसरा कर सकेगा । हमारी असफलता किसी दूसरे की सफलता के लिए राह तैयार कर सकेगी ।"

जॉन हाल्ट बच्चों के संदर्भ में आगे कहते हैं कि हमें प्रयास करना चाहिये कि ऐसी स्थिति पैदा ही न होने दें कि बच्चों को अटूट असफलता मिले । असफलता के प्रति हमें अपना और बच्चों का दृष्टिकोण ही बदल देना चाहिये । हमें देखना चाहिये कि असफलता की भी गरिमा होती है । उसका रूप सकारात्मक होता है न कि लज्जाजनक ।

होती है। अधिकांश स्कूली बच्चे किसी भी सवाल या समस्या को मानों घोषणा के रूप में सुनते हैं कि कहीं बहुत दूर जवानों का देश है वहां उनको दिये गये प्रश्न का उत्तर छुपा है। और अब बच्चों को उसे ढूंढवाना है। अतः हाल्ट के शब्दों में स्कूल में होने वाली प्रायः हर गतिविधि बच्चों को उत्तर-केन्द्रित बनाती है। इससे पहला फायदा यह होता है कि सही उत्तर मिल जाते हैं। स्कूल विद्या के मंदिर न होकर मानो “सही उत्तर” के ही मन्दिर हो, जहां दर्शन के लिए गर्भगृह तक पहुंचने का रास्ता भी ढेरों सही उत्तर पा लेने के बाद ही खुलता हो। फिर यह संभावना भी तो कम नहीं कि शिक्षक स्वयं ही उत्तर-केन्द्रित दृष्टिकोण वाला व्यक्ति हो।

पर जब बच्चों को ऐसी परिस्थितियां मिलती हैं जहां सही उत्तर पा लेने का दबाव उन पर नहीं होता, न ही उन्हें सब कुछ तुरत फुरत कर डालना होता है तो बच्चों का काम सचमुच अदभुत होता है।

जो लोग अंततः यह समझ सके हैं कि मनुष्य की बुद्धि, एक व्यापक और महत्वपूर्ण अर्थ में, कोई स्थिर वस्तु नहीं है बल्कि एक परिवर्तनशील तत्व है, वे भी इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि बुद्धिमानी भी गणित, अंग्रेजी या इतिहास जैसा कोई विषय है जिसे सिखाया जा सकता है। यह निष्कर्ष पूरी तरह गलत है, जो बात स्कूली विषयों पर लागू होती है, वह सबसे पहले बुद्धि पर लागू होती है, वह यह कि सीखने की प्रक्रिया में सबसे बड़ी बाधा हमारा यह दृष्टिकोण ही होता है : “मैं ऐसा कुछ जानता हूँ जो तुम लोग नहीं जानते और अब मैं तुम्हें वह सिखाऊंगा।”

हमें लोगों को मेघावी और चुस्त बनाने की जरूरत है ही नहीं, वे तो पैदाइशी ही ऐसे होते हैं, हमें तो केवल इतना करना है कि हम उनसे वे सारे काम करवाना बन्द कर दें जो उन्हें वेवकूफ या कम अक्ल सिद्ध करते हैं और जो उनकी प्रतिभा को मंद कर देते हैं।

स्कूल का सबसे अहम काम है बच्चों के हाथों एक औजार थमाने का। यह औजार है भाषा। इसकी सहायता से बच्चे अपने आस-पास की दुनियां व जीवन के विषय में सोचना और बोलना सीखते हैं। पर शायद यह कहना बेहतर हो कि उनके पास भाषा का जो औजार पहले से होता है, हम तो उसे मांजते हैं। पर इस काम को करते समय हम ऐसे पेश आते हैं मानों भाषा का यह औजार पूरी तरह निर्दोष हो, और बच्चों को केवल उसका सही उपयोग बताना भर है। पर सच्चाई यह है कि भाषा का यह औजार त्रुटियों से भरा होता है।

विशेषणों को ही लें। उनमें से कई तो सैद्धांतिक रूप से कहने के लिए पूर्ण होते हैं : गोल, हरा, चौकोर, नीला। पर कई

विशेषण तुलनात्मक होते हैं, जैसे - लम्बा, नाटा, पतला, मोटा, भारी, हल्का, पास, दूर, सरल, कठिन। इनमें से किसी का भी अर्थ अपने आप में संपूर्ण नहीं होता। लंबा या नाटा तो किसी वस्तु या व्यक्ति की तुलना में उससे अधिक लम्बा या बड़ा हो सकता है। जाने कितनी ही बार ऐसा होता होगा कि कोई बच्चा किसी एक वस्तु के लिए किसी दिन ऊंचा विशेषण सुने तो दूसरे ही दिन नीचा। फिर हम यह आभास भी तो देते हैं मानों शब्दों के अर्थ सुनिश्चित हों। पर साथ ही हम स्वयं उनका अर्थ बदलते भी चलते हैं। पर शब्दों के अर्थ व्यवहार में बदलते रहते हैं और बच्चे विरोधाभासों के बीच असमंजस में होते हैं।

नई शिक्षण प्रणालियों के संदर्भ में हाल्ट कहते हैं कि कोई शिक्षण प्रणाली हो, विद्यार्थियों को सहयोग करने के नाम पर नुकसान ही पहुंचाती है। अदभुत शिक्षक, प्रतिभाशाली शिक्षक या वे शिक्षक जो सिखाने के लिए नये-नये तरीके ढूंढ निकालते हैं, ये सबके सब अपने विद्यार्थियों को उतना ही नुकसान पहुंचा सकते हैं जितना कि मानक अभ्यास पुस्तिकाओं से पढ़ाने वाले शिक्षक।

शिक्षा में प्रयोग करने वालों के संदर्भ में अपने अनुभवों का हवाला देते हुए हाल्ट कहते हैं कि नई शिक्षण पद्धतियों को खोजने वाले सोचते हैं कि अगर एक अच्छे विचार से कुछ सीखना संभव हुआ है तो सौ विचारों से सौ गुना सीखा जा सकता है। पर ऐसा नहीं होता। सौ अच्छे विचार, सीखने की प्रक्रिया को पूरी तरह जड़ और कुंठित कर देते हैं। अपने अनुभव का उदाहरण देते हुए हाल्ट कहते हैं - “एक शिक्षक के रूप में मैं समझ पाया कि जिस दिन शिक्षण संबंधी नया विचार मेरे मन में खुदबुदाता था, उस दिन शायद ही कक्षा में कुछ अच्छा घटता था। बच्चे संवेदनशील होते हैं। वे हमेशा यह ताड़ लेते थे कि मैं कुछ बदला-बदला सा हूँ। और तब मैं 10 वर्षीय बच्चों के बीच एक 40 वर्षीय शिक्षक नहीं रह जाता था। मैं तो प्रयोगशाला में जानवरों से घिरा एक वैज्ञानिक हो उठता था।”

जान हाल्ट के लिए एक पेचीदा समस्या यह भी है कि शिक्षक या शिक्षार्थी यह कैसे जाने कि उसे कोई बात समझ में आई है अथवा नहीं। हाल्ट कहते हैं कि कई दुखद अनुभवों के बाद मैं यह जान सका कि शायद सौ में से एक ही छात्र ऐसा होता होगा जो यह जान सके कि उसे कोई बात समझ आई भी है या नहीं। ऐसे में उनसे यह अपेक्षा रखना कि वह यह भी बताएं कि उन्हें बात क्यों समझ में नहीं आई, तर्कसंगत नहीं होगा। परीक्षा के अंकों को समझ का आधार नहीं बनाया जा सकता। बहुत अच्छे अंक पाने के बाद भी बहुत सारी बातें हमारे विद्यार्थी नहीं समझ पाते। अंक आना तो सही उत्तर लिख देना भर है। जो अक्सर विद्यार्थियों द्वारा

रट लिया जाता है। इसका समझ से कोई सीधा रिश्ता नहीं है। हाल्ट कहते हैं कि इसका आंशिक समाधान है। इसके लिए परीक्षा की प्रणाली में परिवर्तन करना होगा। बच्चों को ऐसी समस्याएं एवं सवाल दिये जायें कि उनके हल स्वचालित मशीन की तरह न ढूँढ़े जा सकते हों, बल्कि बच्चे सोचने के लिए बाध्य हों। हमें प्रश्न-पत्रों का नया ढांचा बनाना चाहिये। हाल्ट स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि उनका समझ से आशय यह है कि बालक जो समझा है उसे (1) शब्दों में प्रस्तुत कर सके (2) उसके लिए उदाहरण दे सके (3) उसे हर रूप, हर स्थिति में पहचान सके। (4) उसमें तथा दूसरे विचारों में संबंध देख सके। उसके कई उपयोग कर सके। उसके परिणामों का अनुमान लगा सके। उसका विलोम या विपरीत बता सके। यह सूची सम्पूर्ण नहीं है, एक शुरुआत भर है। पर संभव है, इसकी मदद से हम यह अनुमान लगा सकें कि हमारे छात्र असल में क्या जानते हैं, चाहे वे आभास इससे कहीं अधिक जानने का क्यों न देते हों।

ज्ञान, सीखना और समझना एक रेखीय चरण नहीं हैं, न ही वे एक कतार में एक के ऊपर एक रखे हुए जानकारी के टुकड़े हैं। ज्ञान का कोई भी क्षेत्र चाहे वह भाषा हो, विज्ञान हो, संगीत हो या कोई दूसरा विषय क्यों न हो, एक क्षेत्र होता है। उसे जानने का अर्थ उस क्षेत्र की हरेक वस्तु को जानना भर नहीं होता बल्कि यह जानना भी होता है कि उनका परस्पर संबंध क्या है। किनसे उनकी तुलना की जा सकती है, वे कहां एक दूसरे में जुड़ते हैं। निष्कर्ष के तौर पर हाल्ट कहते हैं कि बच्चों को काल्पनिक, थोथी, सैद्धांतिक, नियमों संबंधी बातें सिखाने से कोई समझ पैदा हाने वाली नहीं, उन्हें वास्तविक जीवन में काम आने वाली बातों से ही भाषा, गणित और दूसरे विषयों का ज्ञान कराना चाहिये।

स्कूलों की असफलता और बच्चों की परेशानी

पुस्तक के चौथे भाग में स्कूलों की असफलता बालकों की असफलता में किस तरह परिणित हो जाती है इस को विश्लेषित किया गया है। शिक्षक पढ़ाते तो हैं पर बालक सीखते नहीं हैं। ऐसा क्यों है यह एक पेचीदा सवाल है। जान हाल्ट कहते हैं कि लगता है यह जांच परीक्षा नंबर वाली पूरी व्यवस्था ही एक बड़ी साजिश है जिसका मकसद है छात्र, शिक्षकों व स्कूलों को एक सामूहिक छलावे में भाग लेने देना। यह छलावा कि छात्र सचमुच में वह सब जानते ही हों जो उन्हें जानना चाहिये। जबकि सच्चाई यह है कि वे उसका हिस्सा ही जान पाते हैं। चाहे हमारे परीक्षा परिणाम कुछ भी क्यों न बताते हों, स्कूलों में जो कुछ पढ़ाया जाता है उसका छोटा अंश ही सीखा या याद रखा जाता है। और जो याद रखा जाता है, उसका भी छोटा हिस्सा काम आता है।

शिक्षक व स्कूल अक्सर शिष्ट व्यवहार को ही अच्छे चरित्र के रूप में देखते हैं। वे जिन गुणों को महत्त्वपूर्ण आंकते हैं, वे हैं आज्ञाकारिता व परामर्श ग्राह्यता। जो बच्चा वह सब करता चले जो उसे कहा जाये, वही छात्र उनकी नजरों में अच्छा होता है। किन्तु फिर भी चरित्र निर्माण के सारे प्रयास विफल क्यों हो जाते हैं? जान हाल्ट कहते हैं कि हम बच्चों को जिस रूप में कक्षा में देखते हैं, वह उनका वास्तविक रूप होता ही नहीं। वह तो वयस्कों को अच्छा दिखाने का ही रूप होता है जो उन्होंने वयस्कों से सीखा है। बच्चों का वास्तविक रूप जो उन्हें शिक्षार्थी बनाता है, वह तो छुपा ही रह जाता है। नाटकीयता ओढ़ते-ओढ़ते बच्चे भी उसके आदी हो जाते हैं, पर अधिकांश बच्चे स्कूल की बजाय स्कूल से बाहर ज्यादा सीखते हैं, यहां तक कि स्कूली काम भी। हाल्ट स्कूली परीक्षा प्रणाली, सही उत्तर और अंक-अर्जन को प्रगति का पैमाना मानने के सख्त खिलाफ हैं। वे बच्चों को दिये जाने वाले दण्ड और पुरस्कार को भी तिरस्कार ही मानते हैं। यही कारण है कि बच्चों को स्कूलों में छला जाता है। स्कूल स्वयं असफल होते हुए भी अंततः बालक को ही असफल सिद्ध करते हैं। जान हाल्ट की कुछ पंक्तियां हमारी उस पूरी व्यवस्था को ही झकझोरती हैं जिसमें हम कुछ अच्छा करने का मोह पाले हुए हैं।

“चन्द सुखद अनुभव कड़वे अनुभवों के डंक को मिटा देते हैं। कोई बच्चा आग से एक बार बुरी तरह जला हो तो फिर कभी जलने को तैयार कैसे होगा, चाहे कितने ही लुभावने पुरस्कार का लालच हम उसे देना चाहें। हमारी तमाम बातों व नेक इरादों के बावजूद स्कूलों में इनाम कम और डंडे ज्यादा होते हैं।” जो बच्चे हमें प्रश्नों के अपेक्षित उत्तर नहीं देते उनका भी तो महत्व है, पर इस महत्व को हम स्वीकारते कहां हैं। हम हर अनअपेक्षित उत्तर को गलत मानते हैं, पर वस्तुतः उनमें कई सही उत्तर हो सकते हैं।

कुल मिलाकर यह पुस्तक शिक्षा दार्शनिकों, शिक्षा प्रशासकों, प्रबंधकों, सिद्धांतकारों के काम की हो सकती है। पर तब यह आशंका भी है कि यदि कोई इस पुस्तक में वर्णित प्रसंगों का, उनके संदर्भ और निहितार्थ से काटकर अनुकरण करने लगे तो फिर यह भी एक तरीका तो नहीं बन जायेगी, एक रणनीति, एक प्रणाली, इसमें फिर एक रेखीयपन तो नहीं आ जायेगा। चूंकि यह पुस्तक एक शिक्षक के अनुभवों पर आधारित है जो भरपूर प्रयोग करने के बाद कई-कई बार असफल हुआ, किन्तु उसने अपनी इस असफलता के बावजूद अपने शिक्षार्थियों से सीखा, उनकी मदद की और सीखने-सिखाने के अधिक सुगम और उन्नत मार्ग की खोज की। ◆